अज्ञानता अंधकार है

प्रो. (डॉ.) सोहन राज तातेड़,
पूर्व कुलपति सिंघानिया विश्वविद्यालय, राजस्थान

अज्ञानता अंधकार है और ज्ञान प्रकाश है। दीप स्वयं जलता है और दूसरों को भी प्रकाशित करता है। घने अंधकार में कुछ भी दिखाई नहीं देता। यदि हम कुछ खोजने चलते हैं तो ठोकर लगने से गिर भी सकते हैं। ज्ञान का आत्मा का स्वरूप है। जिसने आत्मतत्त्व को जान लिया उसने सब कुछ जान लिया। भगवान महावीर एक छोटे से प्राणी में पूरा ब्रहमाण्ड देखते थे। भगवान बुद्ध ने सत्य के लिए चार आर्य सत्यों को उपदेश दिया। चार आर्य सत्यों का ज्ञान वास्तविक सत्य है। यह अज्ञानता को दूर करने वाला है। घने अंधकार में यदि एक छोटा सा दीपक जला दिया जाता है तो वह अंधकार को नष्ट कर देता है। ज्ञान भी दीपक के समान है। ज्ञान सुख का खजाना है और अज्ञान दुख का। अज्ञानता के दूर होते ही सुख का खजाना मिल जाता है। यह शरीर मेरा है, यह घर मेरा है, यह वस्तु मेरी है यही अज्ञान या अंहकार है। अज्ञान का शरीर से तादात्म्य स्थापित कर लेते हैं इसी को अज्ञान कहते हैं। कर्ता भाव अज्ञान है। कोई भी कार्य अकेले नहीं होता। कई कारणों के संयोग से कार्य सम्पन्न होता है। किन्तु इसको मैंने किया इस भाव का आना अज्ञान को जन्म देता है। ज्ञाता दृष्टा भाव होना चाहिए। यह भाव होना चाहिए कि मैं शुद्ध आत्मा हूँ। पदार्थ बाह्य तत्व है ये मेरे नहीं हैं और मैं इनका नहीं हूँ। यह ज्ञान सबको होना चाहिए। हमें भीतर की ओर देखना चाहिए। हमें यह मानना चाहिए कि जन्म–जन्मान्तर के किये गये कार्यों के परिणाम स्वरूप शरीर प्राप्त हुआ है। यह शरीर भोगायतन है। भोग के लिए यह शरीर प्राप्त हुआ है। आत्मा जब तक इस शरीर में रहती है तब तक इसका मूल्य है। आत्मा के निकलने के बाद शरीर पंचतत्व में विलीन हो जाता है। पुराने कर्मों का विनाश और नये कर्मों का रूकना आवश्यक है। तभी जीव कर्म से मुक्त हो सकता है। संसार का अंधकार सूर्य के प्रकाश से दूर हो जाता है किन्तु अंदर का अंधकार इतना गहन होता है कि उसे करोड़ों सूर्य का प्रकाश भी दूर नहीं कर सकता। उस अंधकार को दूर करने के लिए ज्ञान के प्रकाश की आवश्यकता होती है। वह

आत्मज्ञान से ही दूर हो सकता है। अतः कर्मों के आवरण को हटाकर स्वप्रकाशी आत्मा का ज्ञान होना चाहिए।

इस संसार में हर प्राणी जीना चाहता है मरना कोई नहीं चाहता है। सभी चाहते है कि मेरा जीवन सुखमय रहे। इस संसार में मानव पर जैसे ही कष्ट आता है। वैसे ही वह तनाव में आ जाता है। अनुकूलता सभी चाहते हैं, प्रतिकूलता कोई नहीं चाहता है। अनुकूलता और प्रतिकूलता जीवन में आने वाले दो पढ़ाव हैं। कोई अच्छी बात जब हम सुनते हैं तो वह हमारे अनुकूल रहती है और हम प्रसन्न हो जाते हैं। जैसे ही हम कोई बुरी बात सुनते हैं और वह हमारे प्रतिकूल रहती है और हम दुःखी हो जाते हैं। सुख और दुःख का यह द्वन्द्व जीवन भर चलता रहता है। हमारे यहां शिक्षण संस्थाओं और विश्वविद्यालयों में अनेक धर्म–दर्शन पढ़ाये जाते हैं, जहां पर सुख और दुःख की दार्शनिक व्याख्या की जाती है। दुःख क्या है? क्यों आता है? दुःख का कारण क्या है? इसको कैसे दूर किया जा सकता है इत्यादि बातों की दार्शनिक मीमांसा प्रायः सभी दर्शन करते हैं। दर्शन में दुःख को अज्ञान, अविद्या, माया, मिथ्यात्व कहा जाता है। अज्ञान और ज्ञान दो चीजे हैं। अज्ञान दुःख है और ज्ञान सही समझ है। दुःख का कारण मूल रूप से अज्ञान ही है। जब मानव वस्तु के यथार्थ स्वरूप को समझ नहीं पाता तो वह अज्ञान में जीता है। वस्तुतः दो तरह का जगत है। एक तो जो हम नेत्रों से देखते हैं और इसी को सत्य मान लेते हैं और जीवनभर हम इस व्यवहार जगत में ही जीते रहते हैं। शरीर इन्द्रिय सृष्टि पारस्परिक संबंध इसी के स्तर पर हम जीते हुए पूरा जीवन बिता डालते हैं। यह संबंधों का जगत है और स्वार्थ पर आधारित है। माता, पिता, भाई–बहन, बेटा–बेटी ये संबंध अवास्तविक हैं। आज है कल नहीं रहेगा। धन–दौलत, रूपया–पैसा ये सब नश्वर हैं। इससे परे एक पारलौकिक जगत है, आत्मा का जगत है। ज्ञानी लोग इसे ही सत्य मानते हैं और सांसारिक वस्तुओं को त्यागकर इसी में रमण करते हैं। बौद्ध दर्शन सर्वं दुःखम् कहकर इस संसार को ही दुःखपूर्ण मानता है और इसे अविद्या की सृष्टि कहता है। जब तक यह अज्ञान दूर नहीं हो जाता तब तक निर्वाण की प्राप्ति असंभव है। ज्ञानी व्यक्ति आत्मनिरीक्षण और आत्मपरीक्षण करता है और स्थूल से सूक्ष्म की ओर चिन्तन करता है, क्योंकि सूक्ष्म में ही विराट समाया रहता है। जैसे एक वट वृक्ष का बीज बहुत ही सूक्ष्म होता है

किन्तु उसके अंतर्गत एक विराट वट वृक्ष समाया रहता है, यही तथ्य आत्मा के संबंध में भी है। आत्मा अतिसूक्ष्म रूपहीन, गंधहीन, वर्णहीन इन्द्रियों से परे सच्चिदानंद स्वरूप है। ज्ञानी व्यक्ति इसी आत्मतत्व की खोज में लगा रहता है। जप, तप, स्वाध्याय और शास्त्र चिन्तन के द्वारा आत्मस्वरूप को पहचानता है और इसका अनुभव करता है। ऋषियों मुनियों ने घोर साधना के द्वारा आत्मतत्व की पहचान की और उसके स्वरूप का वर्णन किया। जिससे सामान्यजन भी आत्मतत्व को जान सके। जो आत्मतत्व को जान लेता है उसके लिए यह सम्पूर्ण संसार ईश्वरमय हो जाता है वह हर जगह ईश्वर का ही दर्शन करता है। हर प्राणी में जीवतत्व का दर्शन करता है। जड़ वस्तुओं में विश्वास करना अज्ञानता है और आत्मा में विश्वास करना ज्ञान है।